अफगानिस्तान में आतंकी नेटवर्क

आम तौर पर भले यह माना और कहा जाता रहा हो कि अलकायदा को खत्म कर दिया गया है और अब उसका कोई वजूद नहीं रहा, लेकिन जानकारों के मुताबिक अफगानिस्तान के दूर-दराज के हिस्सों में इस संगठन से जुड़े लोगों का ढीला-ढाला नेटवर्क लगातार बना रहा।

रमन कपूर।।

अफगानिस्तान से अमेरिकी सेना की वापसी और उसके बाद वहां तालिबान का बढ़ता वर्चस्व कितना खतरनाक हो सकता है, यह धीरे-धीरे साफ होता जा रहा है। जिन इलाकों में तालिबान काबिज हो रहे हैं, वहां तो कट्टर इस्लामी शासन के तौर-तरीकों की वापसी हो ही रही है, इसके साथ-साथ अलकायदा के पुराने भूत के दोबारा जी उठने की ठोस आशंका भी पैदा हो गई है। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की 1267 समिति की ताजा रिपोर्ट बताती है कि अफगानिस्तान के 15 प्रांतों में आतंकी संगठन अलकायदा ऑपरेशनल है। इसी समिति की फरवरी की रिपोर्ट में 11 प्रांतों में अलकायदा की मौजूदगी बताई गई थी। इससे साफ है कि यह आतंकी संगठन गुपचुप अपने प्रभाव का विस्तार करने में लगा हुआ है। आम तौर पर भले यह माना और कहा जाता रहा हो कि अलकायदा को खत्म कर दिया गया है और अब उसका कोई वजूद नहीं रहा, लेकिन जानकारों के मुताबिक अफगानिस्तान के दूर-दराज के हिस्सों में इस संगठन से जुड़े लोगों का ढीला-ढाला नेटवर्क लगातार बना रहा। भले इस नेटवर्क ने अपनी गतिविधियों को तात्कालिक विराम दे दिया हो, लेकिन वह इस स्थिति में तो है ही कि अनुकूल परिस्थितियां देखकर फिर सिर उठाने की कोशिश करे। जिस तेजी से अमेरिकी सेना को वापस बुलाया गया है, उससे आतंकी हलकों में यह संदेश गया है कि अब अमेरिका अफगानिस्तान में इस लड़ाई को जारी नहीं रख पा रहा।

जहां इस संदेश ने आतंकी तत्वों के मनोबल को बढ़ाया है, वहीं तालिबान लड़ाकों का अफगानिस्तान के अधिक से अधिक हिस्से पर काबिज होना वह अनुकूल माहौल मुहैया करा सकता है, जिसका वे इंतजार कर रहे थे। हालांकि कुछ एक्सपर्ट्स मानते हैं कि बदले हालात में तालिबान अतीत की अपनी गलतियों को दोहराना नहीं चाहेंगे। अमेरिका के साथ शांति वार्ता के बाद हुए समझौते के मुताबिक भी वे अफगानिस्तान में अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद से जुड़े तत्वों को किसी भी रूप में बढ़ावा न देने के लिए वचनबद्ध हैं। लेकिन असल सवाल यह है कि अगर तालिबान ऐसा चाह भी लें तो क्या अलकायदा से खुद को पूरी तरह अलग कर सकते हैं और क्या वे अलकायदा पर रोक लगा पाएंगे? पहली बात तो यह कि दोनों संगठनों का जितना लंबा तालमेल रहा है उसमें औपचारिक घोषणाओं को छोड़ दें तो जमीनी स्तर पर उनके कैडर को पूरी तरह अलग नहीं किया जा सकता।

दूसरी बात यह कि चाहे बात तालिबान की हो या अलकायदा की या आईएस-केपी (इस्लामिक स्टेट-खुरासन प्रॉविंस) की ऐसे तमाम संगठनों को फलने-फूलने के लिए धार्मिक कट्टरता का माहौल और राजनीतिक अनिश्चितता व अराजकता की स्थिति चाहिए होती है। जाहिर है, जिस तरह के हालात की ओर अफगानिस्तान जाता हुआ दिख रहा है, उसमें इन तत्वों के बढ़त बनाने के खतरे से इनकार नहीं किया जा सकता।

चरित्र

अशोक वोहरा।

नारद का यह चरित्र समझ में नहीं आता। इधर की उधर लगाना और दो लोगों के बीच भ्रम पैदा करके उन्हें लड़ने में इन्हें कौन-सा आनंद आता है ? भले काम को बिगाड़ने वाला यह कैसे ऋषि है ? भगवान श्रीराम किसी प्रकार की दण्ड की घोषणा करते इससे पहले ही नारद ने कहा – भगवन! इस संबंध में शांत भाव से विचार कर कल दण्ड दीजिएगा। उत्तेजित अवस्था में अभी इस समय हनुमान को दण्ड देना उचित नहीं। सबने इस सुझाब को स्वीकार किया और सभा स्थगित हो गई। रात को हनुमान नारद के आश्रम में आए और कहा – देवर्षि! आप यह कौन-सा खेल खेल रहे हैं ? मेरा वध कराकर आपको क्या मिलेगा ? मैंने तो जो कुछ अविनय किया वह आपकी आज्ञा से ही किया था। नारद हंस कर कहा – हनुमान निराश मत होओ।

संपादकीय

साइड इफेक्ट का डर

कांग्रेस और बीजेपी दोनों को इसका अंदाजा है। वे जानते हैं कि ऐसे कदमों के साइड इफेक्ट भी होते हैं। चुनाव से पहले इस तरह के कदम उठाने से पार्टी के अंदर गुटबाजी बढ़ती है। असंतोष भी बढ़ सकता है, जिसकी राजनीतिक कीमत चुकानी पड़ सकती है। यही कारण है कि इस तरह का फैसला लेने से पहले काफी होमवर्क करना होता है। हालिया फैसलों के पीछे किस पार्टी का कितना तगड़ा होमवर्क था, यह चुनाव नतीजों से ही स्पष्ट होगा। उधर क्षेत्रीय दलों में यह फॉर्म्युला न कारगर होता है न इसकी जरूरत महसूस की जाती है। इसमें पार्टी या सरकार का चेहरा बस एक व्यक्ति होता है, जिसके इर्द-गिर्द चीजें घूमती हैं। लोगों को उन्हें वोट देना या नहीं देना भी इसी चेहरा विशेष पर निर्भर करता है। हालांकि तब भी ओडिशा में लंबे समय से राज कर रहे नवीन पटनायक नियमित अंतराल पर सरकार के अंदर मंत्री और अधिकारियों को बदलते रहे हैं। लेकिन सामान्य ट्रेंड है कि क्षेत्रीय दलों को उनके नेता के नाम पर ही वोट मिलते हैं। अगर उन्हें दूर करने की कोशिश अभी नहीं की गई तो आने वाले समय में मुश्किलें बढ़ सकती हैं।

उत्तराखंड में चार महीने के अंदर दो-दो मुख्यमंत्री बदले गए। कांग्रेस ने भी पंजाब में सीएम बदला। इसके अलावा कुछ और राज्यों में बदलाव की आहट है। पार्टी संगठन के स्तर पर भी बड़े बदलाव किए जा रहे हैं।

राजनीति में बदलाव

नरेंद्र नाथ।।

पिछले कुछ दिनों से राजनीति में बदलाव का मौसम दिख रहा है। मुख्यमंत्री बदले जा रहे हैं। अलग-अलग राज्यों में सरकार और संगठन के स्तर पर परिवर्तन की आहट दिख रही है। खासकर उन राज्यों में बदलाव अधिक दिख रहे हैं, जहां अगले एक साल के अंदर चुनाव होने हैं। बीजेपी पिछले पांच महीने में अपने चार सीएम बदल चुकी है। असम में चुनाव जीतने के बाद सर्बानंद सोनोवाल की जगह हिमंता बिस्व सरमा को सीएम बनाया, लेकिन उत्तराखंड, कर्नाटक और गुजरात में तो बीच टर्म में ही मुख्यमंत्री बदल दिए गए। उत्तराखंड में चार महीने के अंदर दो-दो मुख्यमंत्री बदले गए। कांग्रेस ने भी पंजाब में सीएम बदला। इसके अलावा कुछ और राज्यों में बदलाव की आहट है। पार्टी संगठन के स्तर पर भी बड़े बदलाव किए जा रहे हैं।

इन सभी बदलावों के पीछे दोनों राष्ट्रीय दलों की मूल मंशा है एंटी इनकंबेंसी फैक्टर को काउंटर करना और संगठन के अंदर नई ऊर्जा भरना ताकि राज्यों के विधानसभा चुनावों और 2024 के लोकसभा चुनावों से पहले वे तरोताजा दिख सकें। लेकिन सबसे बड़ा सवाल इन दोनों पार्टियों के संदर्भ में यही पूछा जा रहा है कि क्या चेहरे भर बदल जाने से वे मकसद पूरे हो

जाएंगे, जिनकी आस में इस तरह के बदलाव किए जा रहे हैं?

बीजेपी की बात करें तो एंटी इनकंबेंसी से निपटने का यह प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का पुराना, आजमाया हुआ फॉर्म्युला रहा है। 2001 से 2014 तक उन्होंने इसका सफल उपयोग गुजरात में किया और उसके बाद अपने सफल प्रयोग को दिल्ली आकर पूरे देश में सफलतापूर्वक लागू कर रहे हैं। गुजरात में नरेंद्र मोदी की शैली थी कि वह विधानसभा चुनाव में बड़ी संख्या में मौजूदा विधायकों का टिकट काट देते थे। सरकार में भी नियमित अंतराल पर बड़ा बदलाव करते थे। इससे वह लोकल एमएलए के खिलाफ या सरकार के खिलाफ उपजे एंटी इनकंबेंसी को पूरी तरह काउंटर कर देते थे। अभी जुलाई में केंद्र में अपनी सरकार के सात साल पूरे होने के बाद पीएम नरेंद्र मोदी ने 43 नए मंत्रियों को टीम में शामिल कर अपने इसी आजमाए हुए तरीके से अब तक का सबसे बड़ा बदलाव किया था। हाल के समय का यह सबसे बड़ा फेरबदल था। यह फेरबदल तब हुआ, जब तमाम ओपिनियन पोल में यह बात सामने आई कि सरकार की लोकप्रियता भले बनी हुई है, लेकिन अब लोगों में कई मुद्दों पर बेचैनी और असंतोष भी बढ़ा है।

इसी तरह गुजरात में यह अनोखा और संभवतरू देश में पहला प्रयोग हुआ कि चुनाव से एक साल पहले सीएम सहित पूरे मंत्रिमंडल को बदल डाला गया। कर्नाटक में येदियुरप्पा को हटाना हो या उत्तराखंड में रावत को, इसमें भी यही मंशा सामने आई। 2019 आम चुनाव से पहले खुद पार्टी की इंटरनल रिपोर्ट के अनुसार, लोकल सरकार या सांसदों की एंटी इनकंबेंसी से निपटना सबसे बड़ी चुनौती था। तब बीजेपी ने तीस फीसदी से अधिक मौजूदा सांसदों के टिकट काटे थे। यह प्रयोग भी सफल रहा। दिल्ली में म्यूनिसिपल चुनाव में बीजेपी के प्रति एंटी इनकंबेंसी की बात सामने आई तो आला नेतृत्व की सलाह पर ही सभी पार्षदों का टिकट काट दिया गया था। इसका नतीजा यह हुआ कि विधानसभा चुनाव में बड़ी जीत हासिल करने के बावजूद आम आदमी पार्टी एमसीडी पर कब्जा नहीं कर सकी। वहां बीजेपी ने अपनी सत्ता बरकरार रखी।

अष्टयोग-5049

	3		4	5		
2	30	7	31		34	2
1			3		7	
	28	6	31	6	39	3
4		1			5	7
3	30		32	7	34	
	5		6		2	

प्रस्तुत खेल सुडोकू व जोड़ की पद्धति का मिश्रण है. खड़ी व आड़ी पंक्तियों में 1से 7 तक के अंक लिखने अनिवार्य हैं. गहरे काले वर्ग में लिखी संख्या चारों और के 8 वर्गों की संख्या का कुल योग होगी. सीधी अथवा आड़ी पंक्तियों में 1 से 7 तक के अंक होना अनिवार्य है.

अष्टयोग 5048 का हल

2	3	6	4	1	7	5
7	30	2	25	2	34	4
4	5	1	3	6	7	2
6	28	5	35	3	39	6
1	2	4	6	7	5	3
5	30	3	42	5	34	7
3	5	7	6	4	2	1

Jagrutidaur.com, Bangalore

अपना ब्लॉग

सियासी तस्वीर पूरी तरह नहीं बदलती

मोहन। अब पंजाब चुनाव से चंद महीने पहले कांग्रेस ने भी यही प्रयोग किया है। लेकिन इसके पीछे वजह सिर्फ एंटी इनकंबेंसी को काउंटर करना नहीं था। गुटबाजी भी एक कारण था। पार्टी को लगा कि चुनाव से पहले सरकार का चेहरा बदलने से उसको लाभ मिलेगा। लेकिन क्या यह तरीका हमेशा काम आएगा? पिछले कुछ समय से इसके मिश्रित संकेत दिखे हैं। जानकारों के अनुसार, हमेशा यह कारगर नहीं होता। इसी साल मार्च में कांग्रेस ने पुडुचेरी में एंटी इनकंबेंसी का काउंटर करने के लिए तत्कालीन सीएम नारायणसामी का ही टिकट काट दिया था, लेकिन इसका लाभ पार्टी को नहीं मिला। अगर शीर्ष नेतृत्व के प्रति लोगों में विश्वास हो और उसकी लोकप्रियता अधिक हो तो निचले स्तर पर ऐसे बदलाव का पॉजिटिव संदेश जाता है और यह कारगर होता है। लेकिन अगर लोगों की शिकायत समग्र तौर पर पूरे दल से हो तब इस तरह के बदलावों से भी सियासी तस्वीर पूरी तरह नहीं बदलती है।